विद्या और अविद्या

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्था

विद्या का अर्थ है ज्ञान और अविद्या का अर्थ है अज्ञान अविद्या को दूर करने के लिए विद्या की आवश्यकता होती है। दोनों एक–दूसरे के विरोधी हैं। जहां विद्या है वहां अविद्या नहीं रह सकती। जहां प्रकाश है वहां अंधकार नहीं रह सकता। सूर्य के प्रकाशित होने पर अंधकार स्वतः दूर हो जाता है। प्रकाश अंधकार का बाधक है। अज्ञान या अंधकार दो प्रकार का है। संसार का अंधकार सूर्य के प्रकाश से दूर हो जाता है, लेकिन अन्तःकरण का अज्ञान ज्ञानरूपी प्रकश से ही दूर होता है। अविद्या का जगत् अज्ञान से जुड़ा हुआ है। प्रज्ञा का जगत् ज्ञान का जगत् है, शाश्वत है। आत्मज्ञान शाश्वत ज्ञान है। प्रज्ञा के जाग्रत हो जाने पर यह ज्ञान प्राप्त होता है। शरीर और भौतिक जगत् का ज्ञान जड़ पदार्थ का ज्ञान है। पंचेन्द्रियां आत्मा से शक्ति लेकर अपने भाव को प्रकट करती है। इसे हम करणवीर्य कहते हैं। बुद्धि, मन, अहंकार ये सभी अज्ञा के जगत् है। इन्हें जीवात्मा कहा जाता है। मैं और मेरा का जगत् अज्ञा का परिवार है। यह बहुत विस्तृत है। इसी के द्वारा मानव चौरासी लाख जीव योनियों में भ्रमण करता रहता है। पुण्य के उदय होने पर ज्ञानी पुरुष के सत्संग से प्रज्ञा जागृत होती है।

प्रज्ञा तीसरा नेत्र है। ज्ञान के जागृत होने से अज्ञान भष्मीभूत हो जाता हैं। राग–द्वेष रूपी विष के नष्ट हो जाने पर अहंकार नष्ट हो जाता है। जन्मजन्मान्तर से अर्जित कर्मों की निर्जरा हो जाती है। सामायिक आलोचना प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान के द्वारा जीव योनियों के दोष दूर होते हैं। अतः अज्ञा को छोड़कर प्रज्ञा की शरण जीव को जाना चाहिए। जीव जब ईश्वर की शरण में जाता हैं तो ईश्वर की कृपा से उसके सब दोष दूर हो जाते हैं। ईश्वर की शरण में जाने से जीव के जन्मजन्मांतर के पाप नष्ट हो जाते हैं।

प्रकाश ज्ञान का परिचायक है और अज्ञान अंधकार का द्योतक है। दीपक घोर अंधकार को दूर कर प्रकाश कर देता है। सरस्वती ज्ञान की देवी है। ज्ञान के लिए सरस्वती की आराधना की जाती है। सरस्वती की प्रसन्नता से लोगों को ज्ञान प्राप्त होता है। दीपक को प्रज्ज्वलित करके

सरस्वती की पूजा की जाती है और प्रार्थना की जाती है कि जीवन को ज्योतिर्मय कर दो। ज्ञान दूसरे को प्रकाशित करता है। मानव को स्वपर प्रकाशक होना चाहिए। तीन तरह की चेतना है– स्वार्थ, परार्थ और परमार्थ की चेतना। जियो और जीने दो की भावना परार्थ की चेतना से सम्बन्धित है। स्वार्थ की चेतना अपने और अपने परिवार तक सीमित रहती है। परमार्थ की चेतना ज्योतिर्मय ज्ञान है।

मानव के सामने दो जगत हैं– लौकिक जगत और आध्यात्मिक जगत। लौकिक जगत् पांच इन्द्रियों का जगत है। इस जगत में सभी प्राणी रहते हैं और अपनी चेतना का विकास करते हैं। कुछ प्राणी ऐसे होते हैं जो इस लौकिक जगत से परे आध्यात्मिक जगत का चिंतन करते हैं और अपनी आत्मा का विकास करते हैं। आध्यात्मिकता भारतीय संस्कृति का मूलमंत्र है। आध्यात्मिकता के ही कारण भारत को विश्वगुरु का दर्जा प्राप्त है। प्राच्य और पाश्चात्य संस्कृतियों के मेल से जो संक्रमण आया भौतिक समृद्धि उसी का परिणाम है। हमारे देश में सर्वप्रथम आत्मचिंतन हुआ। हम कौन हैं? कहां से आये हैं? मरने के बाद यहां से आत्मा कहां जाती है? आत्मा का अस्तित्व है या नहीं इन सब विषयों पर भारतीय वाङ्मय में गम्भीर चिंतन हुआ है। इस चिंतन से प्रज्ञा का जगत् उद्घाटित होता है।

भारतीय चिंतकों ने भौतिक समृद्धि को अधिक महत्व नहीं दिया। उनके विचार में धन नश्वर है। आज है कल नहीं रहेगा। इसलिए ऐसी सम्पदा को प्राप्त किया जाये, जिसका अस्तित्व त्रिकाल में वर्तमान रहता है। इसलिए भारतीय शास्त्र वेत्ताओं ने अपने चिंतन के केन्द्र में आत्मा को रखा। भौतिक सम्पत्ति विनश्वर है और आध्यत्मिक सम्पत्ति शाश्वत। जीवन की समग्र समस्याओं का स्वरूप और समाधान समझने के लिए हमें उसके दोनों पक्षों को समझना आवश्यक है। एक वह है जो शरीर से सम्बन्धित है और दूसरा वह है जो अन्तरात्मा पर निर्भर है।

शरीर की समस्याओं और आवश्यकताओं का सीधा सम्बन्ध भौतिक सुखों से है। भोजन, वस्त्र और निवास की सुविधाएं तथा इंद्रियों के अपने–अपने विषय शरीर से संबंधित हैं। ये वस्तुएं उचित समय पर और उचित मात्रा में जब मिलती रहती हैं तो शरीर की तुष्टि होती रहती है। पंचज्ञानेन्द्रिय, पंचकर्मेन्द्रिय और मन ये एकादश इंद्रियां हैं। मन का विषय है लोभ, मोह और

अहंकार ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और मन की जितनी मात्रा में संतुष्टि होती है उतना ही शरीर प्रसन्न रहता है। शारीरिक जीवन चर्या का प्रयास प्रायः इन्हीं कृत्यों में लगा रहता है।

शरीर तुष्टि में इंद्रिय तुष्टि भी एक विषय है। आंख, कान, नाक, जीभ और जननेन्द्रिय के अपने–अपने विषय हैं। इनकी लिप्सा ऐसी है जो भोगों की थकाने वाली मात्रा मिल जाने पर भी संतुष्ट नहीं होती। इच्छा का कोई अंत नहीं। यह आकाश के समान अनन्त है। इच्छा की पूर्ति में ही मानव लगा रहता है और भौतिक सुख–साधनों की खोज जीवनभर चलती रहती है। यह संग्रह की प्रवृत्ति भौतिक लालसा को उत्पन्न करती है। भौतिक वस्तुएं उसके लिए मिथ्या प्रतीत होती हैं। अविद्या मिथ्या जगत है और विद्या परमार्थ जगत् है।